



श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में राष्ट्रवाद का अभिनव स्वरूप

दीक्षा मेहरा

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), चन्द्रावती तिवारी कन्या स्ना. महाविद्यालय, काशीपुर, उत्तराखण्ड, भारत

सारांश

स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्रवाद की अवधारणा भी बदल गई। समस्त भारतीय जनमानस जिसने स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी थी, स्वतंत्रता के लेकर उनकी अलग-अलग अपेक्षाएं थी, स्वतंत्रता के पश्चात् जो परिस्थितियां भारतीय समाज में उभरी वह उन अपेक्षाओं से बिल्कुल भिन्न थी। सत्ता वर्ग में भ्रष्टाचार, लोलुपता, स्वार्थ आदि भावनाएं बलवती होती गईं और आम जनता का समाज और राजनीति से मोहभंग का दौर शुरू हुआ। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में व्यंग्यात्मक ढंग से स्वतंत्रता के बाद की परिस्थितियों को सफलता से उजागर किया गया है। जिसमें राष्ट्रवाद का अभिनव स्वरूप दिखाई देता है।

मूल शब्द: श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास, राग दरबारी, राष्ट्रवाद

प्रस्तावना

राष्ट्रवाद एक ऐसी भावना है जो किसी देश के प्रति प्रेम, समर्पण, त्याग और बलिदान को प्रकट करती है। जब कोई व्यक्ति एक देश के सभी नागरिकों के विकास के विषय में धार्मिक, जातिगत भेदभाव से मुक्त होकर चिंतन करता है, उसके द्वारा राष्ट्रहित की भावना को सबसे ऊपर रखकर कार्य करना, समाज के हर वर्ग के लोगों की रक्षा करना, उनकी मदद करना ही राष्ट्रवाद कहलाता है। वरिष्ठ लेखिका ममता कालिया राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हुए कहती हैं— 'राष्ट्र की पहचान के साथ खुद को जो लोग नहीं जोड़ते हैं, उनका साहित्य राष्ट्र परिधि के साहित्य के बाहर का हिस्सा है।'¹ भारत में राष्ट्रीय भावना का पुरजोर उदय अंग्रेजों से शासनकाल से हुआ। अंग्रेजों के शासनकाल में जब सम्पूर्ण देश की प्रजा ने एक समान यातना का अनुभव किया, तब उन्हें यह प्रतीत हुआ कि वे सब मिलकर एक हैं, चाहे वे किसी जाति, सम्प्रदाय या धर्म के हों, अंग्रेजों के गुलाम हैं और गुलामी से उन्हें एकजुट होकर लड़ना और स्वतंत्र होना है। इस प्रकार एकता के अर्थ में भारतीय राष्ट्रवाद का उदय आधुनिक काल में ही हुआ। आधुनिक काल में राष्ट्रवाद का जो स्वरूप उभरा और विकसित हुआ, उसके मुख्यतः तीन आधार माने जा सकते हैं— पहला अंग्रेजी शासन द्वारा उत्पन्न यातना से मुक्ति दूसरा स्वाधीन भारत का निर्माण एवं उसकी रक्षा, तीसरा जनसामान्य के जीवन में विकास तथा उनकी विभिन्न समस्याओं का निराकरण। इन्हीं आधारों पर देश के कोने-कोने में स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी गयी। कहना न होगा कि स्वाधीनता-प्राप्ति तक प्रथम दो आधार बहुत प्रबल रहे, किंतु स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् तीसरे आधार की ही सार्थकता शेष रह गई।

वर्तमान समस्याओं और प्रश्नों के संदर्भ में जब हम समाज को देखते हैं तो स्वाधीनता का उद्देश्य केवल लोक-कल्याणकारी गणराज्य की संकल्पना नहीं था, उस विकास को अंतिम जन तक पहुँचाने के लिए भी कृतसंकल्प होना था और कहीं-न-कहीं वह अंतिम जन किसी शहर में नहीं अपितु अंचल के दूरस्थ कोने में ही था। आजादी के बाद के दौर में गाँव व कस्बे विकास की धारा के बहाव में आने की कोशिश तो करने लगे किन्तु चन्द पूँजीपतियों और सत्ताधारियों के हाथ की कठपुतली बनके विकास की धारा के रोड़े बनते चले गये। इसी अर्ध विकसित समाज और व्यक्ति की कहानी को श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने

उपन्यास 'राग दरबारी' (1968) में व्यंग्य के माध्यम उजागर करने का सफल प्रयास किया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपने निबन्धों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को प्रत्यक्ष कर नई पीढ़ी को उसके महत्व से परिचित कराया है। वे लिखते हैं— 'राष्ट्रीयता का एक पक्ष वहाँ दिखाई देता है, जहाँ रचनाकार अपनी रचनाओं में वर्तमान के प्रति चिंता व्यक्त करता है, देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करता है, इन स्थितियों में सुधार की कामना करता है, जनता का आह्वान करता है और स्वयं सक्रीयता पूर्वक भाग भी लेता है।'² स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लिखा गया उपन्यास 'राग दरबारी' इसी का उदाहरण है। क्योंकि समकालीन साहित्य अब सामाजिक सक्रियता की ओर बढ़ना चाहता है। परिवर्तन की अदम्य चाह में समकालीन साहित्यकार अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति से नई भूमिका प्रस्तुत कर रहे हैं। वर्तमान समय उस दौर का साक्षी हैं, जहाँ मनुष्य के अमानवीकरण की गति में तीव्रता आई है। वैचारिक दृष्टि से समाजवाद का स्वप्न ध्वस्त हुआ है और यांत्रिक सभ्यता का कहर विद्यमान है। आज साहित्यकार को न केवल आक्रोश व्यक्त करना होता है, बल्कि एक बेहतर सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की तलाश भी करनी है। साहित्य का सरोकार मूलतः शाश्वत मूल्यों, विवेक, भावना और चेतना से होता है। राष्ट्रवाद का अगर कोई अर्थ साहित्य के संदर्भ में है तो यह है कि वह राष्ट्र के लोगों में ऐसी चेतना पैदा करें, जो समानता, सहिष्णुता और शांति की दिशा में समाज और राष्ट्र को आगे ले जाने में सहायक हो। इसी दृष्टिकोण पर शुक्ल जी के उपन्यास 'राग दरबारी' की रचना हुई है। 'शिवपालगंज' गाँव पर केंद्रित यह उपन्यास रोचक एवं कटु राजनीतिक प्रश्नों को उठता है तथा व्यंग्य के माध्यम से गाँव के विद्रूप विकास को उजागर भी करता है।

'राग दरबारी' उपन्यास की शुरुआत शहर से सटे हुए एक ग्राम शिवपालगंज से होती है और फिर यह गाँव धीरे-धीरे इतना फैल जाता है कि सम्पूर्ण देश को ही अपने में समेट लेता है। कुछ 35 अंशों-अध्यायों और 425 पृष्ठों में लिखित इस व्यंग्य-कथा से ही उपन्यास का कलेवर बना है। यह किसी एक घटना अथवा सीमित पात्रों की कहानी न होकर समस्त भारत की और आजादी के बाद के परिवेश की कथा है इसलिए इसका कलेवर अवश्य बृहद है। एक प्रकार से सारा देश ही 'राग

दरबारी' के व्यंग्य का आलम्बन है। व्यंग्य-विधा की ऐसी उन्नायक कृति होने के कारण ही उसे साहित्य-अकादमी के प्रतिष्ठित पुरस्कार से नवाजा गया। इस उपन्यास में राष्ट्रवाद के बदलते स्वरूप को चित्रित किया गया है राष्ट्रवाद के इस बदलते स्वरूप को प्रसिद्ध लेखिका ममता कालिया ने इस प्रकार स्पष्ट किया है- "पुराने जमाने के लेखकों की रचनाओं में देश भक्ति कूट-कूट कर भरी रहती थी, क्योंकि ये तब की मांग थी। तब सभी का मकसद अंग्रेजों को भगाना था। लेकिन अब देश आजाद है देशभक्ति को अब हम झंडे की तरह उठाकर नहीं चल सकते हैं, कुछ गलत होने का विरोध करना भी राष्ट्रभक्ति ही कहलाता है।" 3 अतः यह कहना समीचीन प्रतीत होगा कि श्रीलाल शुक्ल जी का उपन्यास 'राग दरबारी' राष्ट्रवाद पर आधारित उपन्यास है।

शिवपालगंज एक कस्बाई गाँव है, जो शहर से कुछ दूरी पर रोड एवं रेल द्वारा सीधे संपर्क में है। यहाँ एक तहसील का मुख्यालय है जहाँ थोड़े बहुत सरकारी दफ्तर भी हैं। यह एक बदला हुआ भारतीय गाँव है। यह 'गोदान' के गाँव की तरह नहीं है, जिसमें गाँव और शहर दो अलग-अलग दुनिया हैं। यह वह गाँव है जो देश की स्वतंत्रता के बीस साल बाद का है, जहाँ विकास की हवा कुछ हद तक पहुँची है, जहाँ एक इण्टर कॉलेज है, कोओपरेटिव यूनियन है, विकास खंड का दफ्तर है, ताड़ीघर है, थाना है पर फिर भी यह एक गाँव है जो शहर के सीधे संपर्क में है। यह अविकसित एवं विकासशील देशों में नगरीकरण की उस प्रक्रिया का हिस्सा है जहाँ शहर गाँव की तरह और गाँव शहर की तरह लगते हैं। इस उपन्यास के पहले पन्ने में ही स्टेशन से कुछ दूर चलकर आने वाले शहर के किनारे की दुकानों, उनमें पाए जाने वाले पकवानों, पेयों, कूड़े को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों में बदल देने की तरकीबों यातायात के साधन के रूप में सड़क पर पाए जाने वाले ट्रक के खड़े होने के तरीके और चालू फैशन के प्रति आमजन के लगाव, पुलिस की यातायात नियमों को पालन करने की चुस्ती इत्यादि दिखाई देती है यह विशालकाय उपन्यास स्वयं लेखक के शब्दों में इस प्रकार है- "राग दरबारी का सम्बन्ध एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे हुए गाँव की जिन्दगी से है जो पिछले बीस वर्षों की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही है। यह उसी जिन्दगी का दस्तावेज है।" 4

राग दरबारी में वस्तुतः शिवपालगंज के माध्यम से उपन्यासकार भारतीय समाज के देहातीपन की पहचान को नए तरीके से प्रस्तुत करते हैं जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपनी विकास की व्यथा पर रो रहा है, यहाँ विकास के लिए जरूरी कार्यक्रम और अनुदान जमीनी स्तर पर वर्चस्व और सम्पन्नता वाले लोगों के हाथ की कठपुतली हैं, ग्रामीण सत्ता अब भी उच्च जाति के लोगों के हाथ में केन्द्रित है, हर तरफ भ्रष्टाचार, कदाचार, मूल्यहीनता, जातिवाद, भाई-भतिजावाद, लूट-खसोट, चाटुकारिता विद्यमान है। दरअसल यह उपन्यास जिस कालखंड में लिखा गया वह कालखंड 1965-1968 के बीच का है। "यह समय स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्पन्न हुई 'स्वराज से विकास की आकांक्षा' से मोहभंग का था।" 5 यह समय जयप्रकाश नारायण के 'सम्पूर्ण क्रांति' की पृष्ठभूमि का काल था। राष्ट्र निर्माण के दूसरे खतरे के रूप में राजनीतिज्ञों द्वारा संसदीय जनतंत्र की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को दूर करने की अक्षमता और असफलता पर गंभीर आलोचना प्रारम्भ हो चुकी थी। आर्थिक और शैक्षिक व्यवस्था में परिवर्तन के साथ-साथ जमीनी स्तर तक व्यवस्थित और प्रभावी परिवर्तन की कमी खलने लगी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति से गरीबी, भुखमरी, शिक्षा, समानता और अवसरों की प्राप्ति, जीवन दशा में सुधार इत्यादि को लेकर लोगों की जो उम्मीदें थीं उन पर पानी फिरने का अहसास लोगों को होने लगा था, जो कुछ वर्षों के बाद ही जयप्रकाश नारायण के 'सम्पूर्ण क्रांति' के आह्वान और युवाशक्ति से इसको मिलने वाले अभूतपूर्व समर्थन के रूप में अभिव्यक्त हुआ। राग दरबारी संसदीय जनतंत्र के 20 वर्षों के उस अक्षमता को बहुत बेबाकी और चतुराई से जमीनी स्तर पर एक ऐसे 'अपवित्र गठबंधन'

के रूप में उजागर करता है, जो 'स्वराज' के अर्थहीन होने तथा राज्य द्वारा उठाए गए विकास के प्रयासों के असफल होने के पीछे के कारण थे। इस अपवित्र गठबंधन के सूत्राधार और प्रमुख प्रतिनिधि 'वैद्यजी' हैं जिन्होंने चतुराई से जातिगत वर्चस्व, शिक्षा, वैद्यगिरी के हुनर और बाहुबल का तालमेल बिठाया है, जिसका खुलासा उनके आस-पास के लोगों के चरित्र से होता है इसमें लंगड, सनीचर, गयादीन, बट्टी पहलवान, रूपन, बेला, खन्ना आदि प्रमुख हैं जो समाज के विविध पक्षों का वैविध्य प्रस्तुत करते हैं। शिवपालगंज तथा इसकी सम्पूर्ण कथा का सूत्राधार रंगनाथ नामक शोध-छात्र हैं। जो अपना स्वास्थ्य सुधारने हेतु शिवपालगंज में अपने मामा वैद्यजी के पास आता है। उपन्यासकार ने विषय की विशाल परिधि में इन्हीं वैद्यजी को कथा के केन्द्र में रखकर गाँव की सहकारी संस्था, चुनाव, पंचायत, बैंक, पुलिस, शिक्षा-संस्थाएँ, प्रोफेसर, दुकानदार, व्यापार, अफसर, सरकारी योजनाएँ, पहलवान, गुडे, अखबार और बेकारी आदि तमाम दैनिक जीवन के विषयों को स्पर्श किया है। "वैद्यजी शिवपालगंज की राजनीति के आधार स्तम्भ हैं जिनको सर्दी लगने पर सम्पूर्ण गाँव को छींक रोग हो जाता है।" 6 खुद वैद्यजी के कई पेशे हैं, वे हुनरमंद हैं-वैद्यगिरि करते हैं, नेता हैं, कोओपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डेरेक्टर हैं, कॉलेज के प्रबंध मंडल के मैनेजर हैं, जिनके हाथ में 'मास्टरो के आने जाने' का नियंत्रण है, वे देश भक्त हैं जो पहले अंग्रेजों के प्रति श्रद्धाभाव रखते थे जिन्हें अंग्रेजों की गुलामी से तो मुक्ति मिल गई थी। किन्तु अब वे अपने ही देश के तथाकथित सत्ताधारियों की मानसिक गुलामी की शिकस्त से जकड़े हुए थे। कोओपरेटिव यूनियन में वैद्यजी की मिलीभगत से गबन होता है जिसे वे पूरी वाक्पटुता से छूमंतर कर देते हैं- "हमारी यूनियन में गबन नहीं हुआ था इसलिए लोग हमें संदेह की दृष्टि से देखते थे। कोओपरेटिव यूनियन में गबन होना कौन सी नयी बात है। अब वे कह सकते हैं कि वे सच्चे आदमी हैं। गबन हुआ है लेकिन उन्होंने छुपाया नहीं है।" 7 इस प्रकार 'राग दरबारी' राष्ट्रीय विकृतियों को दर्शाने वाला बृहद कोश बन जाता है। उपन्यासकार का कहना है कि अब गाँवों में कमल नहीं, केवल कीचड़ है। सारे मुल्क में शिवपालगंज ही फैला है। इन मुल्कों का प्रतिनिधित्व वैद्य जी जैसे लोगों के हाथ में है उपन्यास में शुक्ल जी ने उनके व्यक्तित्व का वर्णन इस प्रकार किया है- "अंग्रेजों के जमाने में वे अंग्रेजों के लिए श्रद्धा दिखाते थे। देसी हूकूमत के दिनों में वे देसी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे। वे देश के पुराने सेवक थे। पिछले महायुद्ध के दिनों में, जब देश को जापान से खतरा पैदा हो गया था, उन्होंने सुदूर-पूर्व में लड़ने के लिए बहुत से सिपाही भर्ती कराये। अब जरूरत पड़ने पर रातोंरात वे अपने राजनीतिक गुट में सैकड़ों सदस्य भर्ती करा देते थे। पहले भी वे जनता की सेवा जज की इजलास से जूरी और असेसर बनकर, दीवानी मुकदमों में जायदादों के सिपुर्ददार होकर और गाँव के जमीनदारों में लम्बरदार के रूप में करते थे। अब वे कोओपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर और कॉलेज के मैनेजर थे। वास्तव में वे इन पदों पर काम नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्हें पदों का लालच न था। पर उस क्षेत्र में जिम्मेदारी के इन कामों को निभानेवाला कोई आदमी ही न था और वहाँ के जितने नवयुवक थे, वे पुरे देश के नवयुवकों की तरह निकम्मे थे, इसलिए उन्हें बुढ़ापे में इन पदों को संभालना पड़ता था।.....उनकी उमर बासठ साल हो गयी थी..... पर.....सौकड़ों महापुरुषों की तरह वे भी उमर के बावजूद बूढ़े नहीं हुए थे और उन्हीं महापुरुषों की तरह वैद्यजी की यह प्रतिज्ञा थी कि हम बूढ़े तभी होंगे जब मर जायेंगे और जब तक लोग हमें यकीन न दिला देंगे कि तुम मर गए हो, तब तक अपने को जीवित ही समझेंगे और देशसेवा करते रहेंगे। हर बड़े राजनीतिज्ञ की तरह वे राजनीति से नफरत करते थे और राजनीतिज्ञों का मजाक उड़ाते थे। गांधीजी की तरह अपनी राजनैतिक पार्टी में उन्होंने कोई पद नहीं लिया था क्योंकि वे नए खून को प्रोत्साहित करना चाहते थे, पर कोओपरेटिव और कॉलेज के मामलों में लोगों ने उन्हें मजबूर कर दिया था" 8

देश की रक्षा, उसका हित क्या केवल नारों में ही सुरक्षित रहता है? हम राष्ट्रीय गौरव में जो गीत गाएंगे, क्या वही राष्ट्रीयता के दायरे में आएंगे? क्या 15 अगस्त और 26 जनवरी को राष्ट्रगान या देशभक्ति के फिल्मी गीत गा लेना ही हमारी राष्ट्रीयता या देश भक्ति की इति है? ये कई प्रश्न आज के साहित्यकारों को विद्रोही रचनाओं के लिए उकसाते हैं। इस सम्बन्ध में अखिलेश जी का वक्तव्य समीचीन है— “एक लेखक राष्ट्र के आइने में अपने साहित्य को रचता है, वह जिस जगह पर रहता है जिस चीज को देखता है उसी को अपनी रचना में व्यक्त करता है। लेखक की दुनिया में देश बड़ी चीज है, उसके लिए उसका गाँव भी देश ही है।”⁹ शुक्ल जी ने अपने उपन्यास में गाँव के बदलते स्वरूप का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। छात्र राजनीति किस प्रकार गाँव के कॉलेजों को भी अपनी चपेट ले रही है इसके प्रतीक वैद्यजी के छोटे पुत्र रूपन हैं— “रूपन बाबू स्थानीय नेता थे.... उनके नेता होने का सबसे बड़ा आधार यह था कि वे सबको एक निगाह से देखते थे.... वे सबको दयनीय समझते थे, सबका काम करते थे, सबसे काम लेते थे। उनकी इज्जत थी कि पूँजीवाद के प्रतीक दुकानदार उनके हाथ समान बँचते नहीं, अर्पित करते थे और शोषण के प्रतीक इक्केवाले उन्हें शहर तक पहुँचा कर किराया नहीं, आशीर्वाद मांगते थे.... वैसे देखने में उनकी शक्ल एक घबराये हुए मरियल बछड़े की—सी थी, पर उनका रोब पिछले पैर पर खड़े हुए एक हिनहिनाते घोड़े का सा जान पड़ता था। वे पैदायशी नेता थे क्योंकि उनके बाप भी नेता थे। उनके बाप का नाम वैद्यजी था।”¹⁰

देश के एक बुद्धिजीवी और जिम्मेदार नागरिक होने के नाते यह बात लेखक को सर्वाधिक पीड़ित करती है कि हमारे देश में शिक्षा की निरन्तर उपेक्षा हुई है। इसी से सारी समस्याएँ उपजी हैं। शिक्षा का थोड़ा बहुत प्रचार—प्रसार अवश्य हुआ पर गुणात्मक चेतना अथवा सार्थक शिक्षा के अभाव में हमारा प्रजातन्त्र अब भी लड़खड़ाता हुआ चल रहा है। उपन्यास का एक पात्र रंगनाथ शिक्षा की विडम्बना और नगरीय संस्कृति की निरर्थकता को प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार ने बेरोजगारी से जूझने वाले इस दुर्बलकाय युवक के शोधकार्य को घास खोदने के समान माना है। भावात्मक आक्रोश तो उनके पास है पर हमारी युवा शिक्षित पीढ़ी में क्रियात्मकता का अभाव है। उपन्यासकार ने बड़ी बेबाक ढंग से हमारे युवा—वर्ग की शहरी मानसिकता, पश्चिमी संस्कृति का अन्धानुकरण और अस्मिता की लुप्तप्राय—चेतना पर व्यंग्य किया है। प्रिंसीपल के शब्दों में “विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यदि साबित करना पड़ जाये कि हम अपने बाप की औलाद नहीं हैं, तो उसे भी साबित कर देंगे।”¹¹

मूलतः स्वातन्त्र्योत्तर भारत के विकास की यही व्यथा कथा है कि कैसे पढ़े—लिखे या जानकार लोग जाति, शक्ति और दलबंदी/गुटबंदी के आधार पर स्थानीय सत्ता की लगाम अपने हाथ में रखते हैं और सरकारी अनुदानों एवं कार्यक्रमों का दोहन और दुरुपयोग अपने—अपने समूह के हित में करके विकास को वास्तविक लाभार्थियों तक पहुँचाने से रोक देते हैं। इस गाँव का भी यही सच है कि गाँव का द्वंद्व ‘नायक’ या ‘खलनायक’, ‘आदर्श’ और ‘पतित’, ‘सत्य’ और ‘असत्य’ के बीच नहीं है इसमें सभी खलनायक और पतित हैं जो दो गुटों में विभाजित हैं और एक दूसरे पर हावी बने रहने के फ़िराक में रहते हैं। अतंतः यही कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद का स्वरूप पिछले कुछ वर्षों से कुरूप हुआ है राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि में यह कुरूपता भय, भूख और भ्रष्टाचार है। किसान आत्महत्या, मजदूरों का शोषण आदि भी समाज की मुख्य धारा में शामिल हैं। वर्तमान समय में इन समस्याओं को उजागर करने वाला साहित्य ही राष्ट्रवादी परम्परा का साहित्य है। जिसमें स्वतन्त्र होकर भी व्यक्ति परतन्त्र है।

सन्दर्भ

1. <http://m-aajtak-in@sahitya>
2. शोध दिशारू शोध आलेखरू संदीपकुमार यादव पृष्ठ—192
3. <http://m-aajtak-in@sahitya>
4. डॉ. विजयचन्द्ररू हिन्दी आलोचना एवं अनुसंधान, पृष्ठ—42
5. ‘राग दरबारी’ का समाजशास्त्ररू त्रिभूनाथ दुबे, शोध आलेख
6. <https://www-researchgate-net@publication>
7. श्रीलाल शुक्लरू राग दरबारी, 1968, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली— 51
8. वहि, 67
9. वहि, पृष्ठ— 29—30
10. <http://m-aajtak-in@sahitya>
11. श्रीलाल शुक्लरू राग दरबारी, 1968, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ—15
12. वही, पृष्ठ—101